आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 2/जून 2025
Received: 17/06/2025; Accepted: 20/06/2025; Published: 28/06/2025

अवधी फाग गीतों के विविध रंग-रूप

- आशीष मिश्रा
शोध–छात्र
हिंदी विभाग, फ.अ.अ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
महमूदाबाद, सीतापुर, उत्तर प्रदेश
संपर्क- 8004700880
ईमेल- aaashish24@gmail.com

आशीष मिश्रा, अवधी फाग गीतों के विविध रंग-रूप, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक 2/जून 2025**,(106-117) https://doi.org/10.5281/zenodo.15767927

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

अवधी, जिसको पहले हिन्दी साहित्य के मध्यकाल की सोलहवीं शताब्दी में जायसी ने 'पद्मावत' से एक मजबूत साहित्यिक सम्मान दिलवाया और फिर उसी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बाबा तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के कलेवर में उसे अमर कर दिया और वो प्रसिद्धि दिलाई जिसके बल-बूते पर आगे चलके आधुनिक काल में रमई काका, वंशीधर शुक्ल, त्रिलोचन, बलभद्रप्रसाद दीक्षित 'पढ़ीस' सरीखे कवियों ने अवधी के साहित्यिक संसार को और समृद्ध किया। अवधी का क्षेत्र केवल शिष्ट साहित्य में ही नहीं अपितु लोक-साहित्य में भी अत्यंत समृद्ध है। अवध क्षेत्र के गांवों में यदि हम घूमेंगे तो लोक-साहित्य की हर विधा और हर स्वरूप को हम मूर्त होते देख ही लेंगे। साहित्य के क्षेत्र में अवधी के उर्वर धरा कहीं भी सूखती हुई नहीं दिखाई पड़ती है फिर चाहे वो पढे-लिखों के मन को भाने वाला शिष्ट साहित्य हो या 'लोक' की अपनी अभिव्यक्ति का साधन और उनके मन का दर्पण बना 'लोक-साहित्य'।

'फाग' एक प्रकार का लोकगीत है, जिसे हम ऋतुगीत के अंतर्गत समाहित करते हैं। ऋतुगीत वे गीत होते हैं जिनका गायन वर्ष भर नहीं अपितु वर्ष की किसी विशेष ऋतु या खंड के अंतर्गत होता है, जैसे चैत्र मास या 'चैत' में गाया जाने वाला 'चैता' और सावन में गाई जाने वाली कजरी। फाग के नाम से ही पता चलता है ये फागुन में गाया जाता है और इसी कारण इसे 'फगुआ' भी कहा जाता है। फागुन महीना होली का महीना है और

ये गीत होली के त्योहार से ही जुड़े हुए हैं। यद्यपि इसका नाम 'फाग' है और मुख्य रूप से ये फागुन में ही गाया जाता है किन्तु इसका गायन माघ महीने की 'बसंत पंचमी' से ही प्रारंभ हो जाता है। इधर प्रकृति में ऋतुराज वसंत का आगमन होता है और उधर गांवों में फाग गीतों की स्वरलहरियाँ उठनी प्रारंभ हो जाती हैं। डॉ. रामबहादुर मिश्र 'फाग' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं-

'फागुन महीने में हवा के जो झंकोरे आते हैं, उसे 'दिन फगुवाये हैं' ऐसा कहा जाता है। इस हवा का शरीर से स्पर्श होने पर हमारी शृंगारिक भावना और आमोद-प्रमोद बंधन मुक्त हो जाते हैं, ऐसे ही समय में आता है होली का पर्व जो विद्रोह और आमोद का पर्व है, सामाजिक बंधनों से विद्रोह, रूढ़ियों से विद्रोह, अनेकानेक अवरोधों से विद्रोह। इन विभिन्न भावों को जनमानस फागों द्वारा अभिव्यक्त करता हुआ दिखाई पड़ता है। फागों के संबंध में हम कह सकते हैं कि फाग वे लोकगीत हैं जो बसंतोत्सव, रंगोत्सव, होलिकोत्सव अथवा फागोत्सव पर गाए जाते हैं।'[1]

फाग लोकमानस कि गीतात्मक अभिव्यक्ति हैं जो कि परंपरा में वसंत ऋतु के आगमन से लेकर नए संवत् के प्रारंभ तक गाए जाते हैं। इनके केंद्र मे भारतीय संस्कृति का एक बड़ा त्योहार 'होली' का उत्सव मनाना होता है। एक विशेष ऋतु से संबंधित होने के कारण ही ये लोकगीतों के अंतर्गत ऋतुगीत के रूप मे वर्गीकृत किए जाते हैं। वसंत ऋतु की मस्ती और उल्लास के भावों से ये सिक्त होते हैं। इनकी सहजता और सुंदरता इनके ऋतुराज वसंत के स्वागत गीत होने का कारण है। वसंत ऋतु के सुंदर प्राकृतिक शृंगार और उल्लास से अभिभूत होकर लोकमानस की भाव और उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति हैं ये फाग।

अवधी के क्षेत्र में गाए जाने वाले फाग गीतों का स्वरूप और इनकी विषय विविधता बहुत अधिक है। इस शोध पत्र में हम इस क्षेत्र में गाए जाने वाले फाग गीतों के विभिन्न रूपों की चर्चा करेंगे। धीरे-धीरे अब गांवों में भी प्रचलन से बाहर होते हुए इन गीतों के संरक्षण के लिए ये आवश्यक है कि इन गीतों के बारे में अधिकाधिक जानकारी वर्तमान पीढ़ी को रहे। विषय वैविध्य के आधार पर तो फाग गीत कई प्रकार के होते ही हैं जैसे, धार्मिक, शृंगारिक आदि किन्तु छंद शैली और गायन के आधार पर भी कई प्रकार के फाग गीत होते हैं। कुछ बड़े, कुछ छोटे किन्तु चुटीले, कुछ गीतों को घरों के बाहर फगुहारों कि मंडलियाँ गाती हैं और कुछ को घर के आँगन में स्त्रियाँ। ऐसे विभिन्न फाग गीतों के स्वरूपों को हम नीचे देखेंगे।

1. चौताल-

अवध प्रांत में चौताल फाग गीतों के पर्याय माने जाते हैं। फाग गीतों में चौताल का ही गायन यहाँ के क्षेत्रों में प्रमुखता से होता है। ढोलक, झांझ, मंजीरा, करताल आदि कि धुनों पर बसंती बयार कि मस्ती में चौताल का गायन ऐसा होता है कि गाने वाले और सुनने वाले दोनों झूम उठते हैं। पंडित राधावल्लभ चतुर्वेदी, चौताल कि परिभाषा निम्न प्रकार से देते हैं-

"चौताल गीत फागुन में गाया जाता है। इस गीत का जैसा नाम है वैसा ही इसमें गुण भी है। इसे चार अलग अलग लय में गाया जाता है। पहले चाचर में और फिर कहरवे कि तीन लय बरती जाती है। चौताल को सहगान के रूप में गाया जाता है। इसमें ढोल। मजीरा, झांझ, चिकारा आदि वाद्य बजाए जाते हैं।"[2]

चौताल का आकार बड़ा होता है, और इसके गायन में प्रायः आधे घंटे का समय लग जाता है।एक चौताल का उदाहरण देखिए-

यह चरण सरोज तिहारे रमा हो पति प्यारे।

हे दसरथ के सुवन दयानिधि दीन बन्धु हितकारे।

कर धनु सिर मुकुट विराजत कलंगी बहु भांति संवारे। रमा....

कमल नैन मुख बैन सुधामय केसर तिलक लिलारे।

कंठा कंठमाल मणि संयुत श्रुति कुण्डल की गति न्यारे। रमा....।[3]

ये लोकगीत का छंद है, शास्त्रीय छंद न होने के कारण इसमें मात्राओं कि संख्या हर बार एक जैसी नहीं होती है, गीत-गीत में कम ज्यादा होती रहती है। मात्राओं के कम-ज्यादा होने को, गाते समय सुराघात-बलाघात के द्वारा सही किया जाता है। लेकिन अधिकतर चौतालों में पहली पंक्ति में 24 मात्राएँ देखी जाती हैं, दूसरी में 25 या 27 और तीसरी में 29 मात्राएँ। तीसरी पंक्ति के बाद पहली पंक्ति के अंत में आए टेक को फिर से गाया जाता है। दूसरी और तीसरी पंक्ति को दो-दो बार गाया और दुहराया जाता है, इस प्रकार एक चौताल के गायन में प्रायः आधे घंटे का समय लग जाता है। वर्तमान अयोध्या जिले के भरतपुर टाँड़वा ग्राम के निवासी द्विज छोटकुन को चौताल का अन्वेषक माना जाता है।[4] चौताल को इसकी प्रसिद्धि के आधार के आधार पर यदि फाग गीतों का राजा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

2. <u>डेढ़ताल-</u>

'डेढ़ताल', एक प्रकार से 'चौताल' का ही विस्तृत रूप है। 'चौताल' की पहली पंक्ति में टेक से पहले एक पंक्ति और जोड़ देने पर वह 'डेढ़ताल' बन जाता है। जहां 'चौताल' कि पंक्ति एक बार यति लेने में पूरी हो जाती है वहीं 'डेढ़ताल' में मुख्य पंक्ति 3 बार यति लेने से पूरी होती है। इसके गायन में साँसों का जोर अधिक लगता है क्यूंकी इसमें स्वर को अधिक खींचना पड़ता है। 'चौताल' से 'डेढ़ताल' कैसे बनता है एक उदाहरण से समझिए, रामप्रताप पाठक का एक चौताल है-

"पिरथी पापन से गरुआनी, आगि उधिरानी।"

इसी का डेढ़ताल इस प्रकार है-

"पिरथी पापन से गरुआनी, दीनानाथ कै भृकुटी टेढ़ानी, आगि उधिरानी।"

इनका कथानक भी चौतल से विस्तृत होता है। 'डेढ़ताल' के आविष्कार के साथ दो फगुहारों का नाम जुड़ा हुआ है दोनों ही अयोध्या जिले से संबंधित हैं, एक हैं श्यामसुंदर गांधीदास और दूसरे हैं द्विज जगन्नाथ। द्विज जगन्नाथ चौताल के बहुत बड़े गवैया थे, एक दंगल में उनके सामने गाँधीदास ने स्वरचित एक नया छंद सुनाया जिसे सुन

कर सभी दंग रह गए, पूछने पर उन्होंने इसका नाम बताया 'चमन'। बाद में इसी 'चमन' को द्विज जगन्नाथ ने 'डेढ़ताल' के नाम से प्रचारित किया।[5] एक डेढ़ताल का उदाहरण नीचे प्रस्तुत है-

आजु मिथिला नगरिया की नारी, हंसि-हंसि के राम जी का प्यारी, देत सब गारी।

बोली सखी सुनौ जगपालन, दिल से आज बतावहूं लालन, सांची बात उचारी, देत सब गारी।

तोहरे तौ मातु तीन सौ साठी, दसरथ जी के गले कर घाटी,

वनके जिन्दगी की बड़ी खुंवारी. जा के दो-दो मिनट की पारी, देत सब गारी।[6]

3. <u>ढाईताल-</u>

'ढाईताल', 'डेढ़ताल' का भी विस्तृत रूप है। जहां 'डेढ़ताल' की एक पंक्ति 3 बार यति लेने से पूरी होती है, वहीं 'ढाईताल' की एक पंक्ति 5 बार यति लेने पर पूरी होती है। इसके गायन के लिए विशेष कुशलता की आवश्यकता होती है, क्यूंकी इसमें सांस को अत्यधिक खींचना पड़ता है। गायन कठिन होने के कारण ही 'चौताल' और 'डेढ़ताल' कि अपेक्षा 'ढाईताल' बहुत कम संख्या में प्राप्त होते हैं और गाए जाते हैं। आकार में बड़े होने के कारण इनमें कथानक इत्यादि के लिए भी पर्याप्त अवकाश होता है। एक अत्यंत ही प्रसिद्ध ढाईताल नीचे प्रस्तुत है-

यह नर तन पायौ, वृथा ही गँवायौ, सफल न बनायौ, नित पेटहिं पेट जियायौ, प्रभुहि नहिं ध्यायौ।

कपट जाल पुरुषत्व नहीं है, हिंसा सत्य में तत्व नहीं है,

मूरख नाम धरायौ, प्रभुहि नहिं ध्यायौ।

न्याय दया तप ब्रत न कीन्हा, दीन सुपात्र को दान न दीन्हा,

ओम सुनाम का अर्थ न चीन्हा।

मन लोभ बढ़ायौ, औ पाप कमायौ, बहुत दुख पायो,

भ्रम मूलक पंथ अपनायौ, प्रभुहि नाहीं ध्यायौ।[7]

4. <u>होरी-</u>

'होरी', होली का ही तद्भव रूप है। जहां 'चौताल', 'डेढ़ताल' आदि फाग पुरुषों की टोलियों द्वारा गाए जाते हैं, वहीं 'होरी' मुख्यतः स्त्रियों के द्वारा गाया जाता है। गाँव कि स्त्रियाँ शाम को गृह कार्य इत्यादि से निवृत होकर अपनी टोली बना कर इन गीतों को गाती हैं। ये गीत शृंगारिक भावना से ओत प्रोत होते हैं और इनकी विषय वस्तु भी स्त्रियों से ही संबंधित होती है, उनकी समस्याओं और उनकी खुशियों से भी।

'होरी' गीतों के शिल्प में एक बात मुख्य रूप से देखने को मिलती है कि प्रायः या तो इन गीतों के अंतरे में प्रश्न-उत्तर की शैली मिलती है, जैसे- "काहेन के चारिउ खंभा गड़े हैं, काहे के माडौ छवाई, चलौ भइया बियहि लै आई" ये प्रश्न हो गया अब अगले अंतरे में इसका उत्तर मिलता है- "लोहेन के चारिउ खंभा गड़े हैं, पानेन बंगला छवाई, चलौ भइया बियाहि लै आई" या फिर हर अंतरे में अलग अलग रिश्तों को (पिता, माता, भाई, भाभी, ननद, देवर आदि) एक एक कर के संबोधित किया जाता है, जैसे- "पहिली अनउनी ससुर मोरा आए, ससुरु लौटि घर जाव, बिना होली तापे न जाबै" फिर इसके आगे के अंतरे में होगा- "दूसरी अनउनी जेठ मोरे आए, जेठा लौटि घर जाव, बिना होली तापे न जाबै" ऐसे ही आगे आगे के अंतरे में जेठ कि जगह देवर, फिर स्वामी का सम्बोधन होगा और गीत आगे बढ़ेगा। यही दोनों शैलियाँ स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले कमोबेश हर लोकगीतों में मिलती हैं, यानि यही शैली स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों की एक मुख्य पहचान है। एक होरी का उदाहरण देखिए-

चलिगै है फगुनी बयार स्याम हम मैके न जाबैं।

पहिली अनउनी नौवा मोरा आए,

नौवा का दियबै लौटाय, स्याम हम मैके न जाबैं।

दुसरी अनउनी बारी भैया आयें,

बारी का देबै लौटाय, स्याम हम मैके न जाबैं।

तिसरी अनउनी बिरन भैया आए,

बिरना का दियबै जवाब, स्याम हम मैके न जाबैं।

नौवा जवाब दीहौ, बारी जवाब दीहौ,

सारे का दीहौ न जवाब धना मैके ले जाबैं।

चलिगै है फगुनी बयार स्याम हम मैके न जाबैं।[8]

5. धमार-

'होरी' का गायन जहां महिलाओं के द्वारा होता है वहीं 'धमार' पुरुष प्रधान गीत हैं। फाग गीतों सर्वाधिक शास्त्रीयता 'धमार' में ही होती है, इसमें लय और ताल का विशेष ध्यान रखा जाता है। शास्त्रीय संगीत में 'धमार' एक ताल का प्रकार है, अवधी फाग गीतों का ये 'धमार' उस 'धमार ताल' से थोड़ा अलग है, वो पूर्ण रूप से शास्त्रीय ताल है जबकि ये लोकगीतों के गायन कि एक शैली है। मात्राएँ इत्यादि 'धमार ताल' में निश्चित होती हैं जबकि इस 'धमार' में उनकी संख्या निश्चित नहीं होती है। हाँ गायन में लयकारियों का चमत्कार और बारीकियाँ इसमें भी होती हैं।

'धमार' गीतों कि विषय वस्तु अधिकतर धार्मिक ही होती है। रामायण, महाभारत इत्यादि के कथा प्रसंगों का गायन धमार के माध्यम से होता है। अन्य फाग गीतों कि तुलना में ये कम शृंगारिक होते हैं। शिल्प में 'धमार' पदों के जैसे होते हैं, सूर और तुलसी के पद इस क्षेत्र में काफी लोकप्रिय भी थे इसलिए कई 'धमार' गीतों में सूरदास और तुलसीदास का नाम भी मिल जाता है, लेकिन इसका ये मतलब नहीं कि वे सूर या तुलसी के द्वारा रचित हों, उनका रचनाकार भी कोई अज्ञात लोक-कवि ही है, किन्तु प्रचार के लिए इसमें सूर या तुलसी का नाम डाल दिया गया है। नीचे एक 'धमार' गीत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-

भजु मन कृष्ण चरन दिनराती।

रसना भजो कृष्ण कोमल पद नाम लेत अलसाती।

जाके भजे मिटत दुख दारुन तिनको क्यों बिसराती। भजु मन...।

जाको सुर मुनि ध्यान धरत है, ब्रह्मन वेद कहाती।

कृष्ण चन्द का नाम अमीरस सो रस क्यों न खाती। भजु मन...।

जाके भजे कटे भव बन्धन सुनि त्रय ताप नसाती।

बदन पुरान सुयस राधावर आनन्द हित न समाती। भजु मन...।

संबत उनइस सौ सत्तावन जेठ मास रवि स्वाती ।

शिव मंगल यह विनय करत हैं, कृष्ण अरंज की पाती।

भजु मन कृष्ण चरन दिन राती।[९]

6. उलारा-

'चौताल', 'डेढ़ताल', 'ढाईताल' आदि गीत आकार में बड़े होते हैं तथा इनके गायन में अधिक समय और ऊर्जा लगती है। इसलिए दो आकार में बड़े गीत लगातार एक साथ नहीं गाए जाते हैं। ऐसे में दो बड़े गीतों के बीच में कुछ छोटे, चुटीले गीतों का गायन होता है जिससे एक तो गायक को थोड़ा विश्राम भी मिल जाता है और दूसरे रस का धारा भी अविच्छिन्न रहती है। 'उलारा' इसी तरह का एक छोटा गीत होता है जिसे दो बड़े फाग गीतों के बीच में गाया जाता है। ये आकार में लघु होते हैं, छोटे होने के कारण ये चुटीले और उक्ति वैचित्र्य से भरे हुए होते हैं।

सइयां न आए भवनवा हमारे,

बैरी फागुन नगिचावा है।

किहो करार बसंत मा अउबै,

तुम्हरी सेजरिया प धूम मचउबै

सो सब भूलि गयौ मनमोहन, बैरी फागुन नगिचावा है।

राम उजागिर कहै समुझाई, धाय आय के मिलौ कन्हाई,

नाहीं तौ निसरैं पापी परनवां, बैरी फागुन नगिचावा है।[10]

7. कबीर एवं जोगीरा-

होली के समय पर गांवों में नवयुवकों की टोलियाँ गाँव में घूम-घूम कर ढोलक-झाल बजा कर मस्ती भरे गीत गाते हैं जिनमें 'हो! कबीरा सररररररररर' 'हो! जोगीरा सररररररररर' कि धुन होती है। इन्हीं गीतों को 'कबीरा' या 'जोगीरा' या फिर 'कबीर' कहा जाता है। हो सकता है की पहले ऐसे गीत कबीरपंथियों और नाथपंथियों द्वारा गाए जाते रहे हों इसीलिए इनमें कबीरा और जोगीरा जुड़े हुए हैं। किन्तु आज के समय में सिर्फ कबीरा और जोगीरा ही जुड़ा रह गया है कबीरपंथियों और नाथपंथियों के उपदेश तो इन गीतों से गायब ही हो गए हैं, अब अधिकतर अश्लीलता के पुट से भरी कविताएं ही कबीर और जोगीरा के साथ देखने को मिलती हैं। इनमें मस्ती का भाव तो भरपूर होता है किन्तु कुछ अश्लीलता का पुट लिए हुए, इसका एक कारण ये भी हो सकता है कि ये गीत अब नवयुवकों कि टोलियाँ गाती हैं जो कि होली कि मस्ती में सराबोर होते हैं तो ठिठोली के लिए ऐसी कविताएँ, ऐसे गीत बरबस ही उनके मुंह से निकाल पड़ते होंगे-

हो! सा रा रा र र र जोगीरा सा र र र र

अरहर के पत्ते पै बैठी बा बौका, अरहर के पत्ते पै बैठी बा बौका,

हम जानि गयन भौजी तू देबू धोखा, बोल सा रा रा र र र हो कबीरा सा रा र र र।

8. बेलवरिया-

ये न तो आकार में बहुत बड़े होते हैं और न ही लघु। बेलवरिया में कोई कहानी गा कर कही जाती है। ये वाराणसी से सटे हुए क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय है, इसका गायन भी फाग गीतों के समय ही होता है। इसमें कथा के बीच बीच में दोहा भी कहा जाता है। एक बेलवरिया का उदाहरण नीचे है-

बेलवरिया (रासलीला)

यसुदा के लाल, रास रचाया इक दिन।

दो०-शरद पूर्णिमा के दिन मोहन मुरली मधुर बजाई।

सुनकर मीठी तान गोपियाँ गइली सब पगलाई॥

बेल०-शाम की बेला, थे श्याम रचाये खेला।

सुनकर आवाज, सुनो हाल सखियों का।

सब लाज लिहाज, सुध बुध घर की भूली।

भूली हर काज, सुनी तान मुरली की।

हो गई बेहाल रास। रचाया... ।। १ ।।

दो०-कोई पती का पैर दबातो, छोड़ चली तत्काल।

छोड़ रसोई घर की कोई, चली बिखेरे बाल ।।[11]

9. मतवाला-

मतवाला भी आकार में छोटा होता है, 'उलारा' की ही भांति ये भी दो बड़े गीतों के बीच में विश्राम तथा रस परिवर्तन की दृष्टि से गाया जाता है। लघु होने के कारण इनका कथानक भी अति संक्षिप्त होता है। नीचे ठाकुर शिवप्रसाद सिंह का एक प्रसिद्ध मतवाला उदाहरण रूप में दिया जा रहा है-

पापी पपिहा मरै न टरै मोका बोलि के गोली से मारेला।

ऋतु बसंत जब लागन लागे,

हमरा भवनवां हम तजि भागे।

मैं बिरहिन बिरहा में जरौं, मोका बोलि के गोली से मारेला।

शिव प्रसाद मोका न जलाओ,

पिया-पिया बोलि न पक्षी सुनाओ।

केहि विधि जिया अब धीर धरौ, मोका बोलि के गोली से मारेला।

पापी पपिहा मरै न टरै मोका बोलि के गोली से मारेला।[12]

10. रसिया-

रसिया वैसे तो ब्रजभाषा का एक अत्यंत प्रसिद्ध लोकगीत है। ब्रज क्षेत्र में वैसे तो पूरे वर्ष भर 'रसिया' गाया जाता है किन्तु होली के अवसर पर विशेष रूप से इसका गायन होता है। अवधी क्षेत्रों में भी अन्य फाग गीतों के साथ कहीं-कहीं रसिया गाया जाता है। इनका आकार भी विस्तृत होता है। एक रसिया उदाहरण रूप में नीचे प्रस्तुत है-

काजर बिंदिया खूबै लगावै,

गोरी फागुन मस्त महीना में।

बिना काम के इत उत डोलै, काउ काउ रसियन के ऊपर बोलै।

घूँघट खोलि नैन फरकावे, फागुन मस्त महीना में।

सास ससुर को डर नहिं करती,

पनघट पे दिन भर जल भरती

रस्ता चालत कमर लचकावे, फागुन मस्त महीना में।

नए नए सिंगार बनावे, ऊपर नीचे सब सजि आवे,

तन ते मन ते रंग बरसावे, फागुन मस्त महीना में।[13]

11. चौतल्ली-

'चौतल्ली' आकार में बहुत छोटा फाग गीत है। इसकी विशेषता होती है कि इसका गायन प्रायः दो चौतालों के मध्य में होता है, अर्थात यह प्रायः प्रत्येक चौताल या डेढ़ताल के पश्चात गाया जाता है-

कर दोनों हमें पिया पइयाँ सखि।

जब रहे जोबन दोनो कोरा, तब लाए गवन पिया मोरा,

मोरी रही उमर लड़कइयां, दोनों जोंबन रहे सरसइयां, सखि। कर दोनों....।

मोहिं पकरि पकरि लपटावैं, छतियो सौबार लगावें,

शिव प्रसाद भए निरदइया, जैसे रेते गाय कसइया, सखि। कर दोनों....।[14]

12. दोतल्ली-

'दोतल्ली' भी 'चौतल्ली' के समान ही अति संक्षिप्त फाग गीत है, इसका गायन भी चौताल या डेढ़ताल के बाद होता है-

आवो आवो लड़ाए दोनों नयना पिया,

आवो आवो लड़ाए दोनों नयना पिया।

हम तोहे ताकीं, तुहूँ हमैं निहारा,

जौने से सुख होय जिया, आवो आवो लड़ाए दोनों नयना पिया।

शिवप्रसाद न छोड़ो, बोलो बोलिया जैसे धिया।

आवो आवो लड़ाए दोनों नयना पिया, आवो आवो।[15]

13. चहका-

द्रुत लय में गाया जाने वाला यह गीत भी फाग गीतों कि श्रेणी में आता है। ये भी लघु गीत हैं, फाग गायकों कि टोली इन्हें गांवों में चलते-चलते गाती हैं-

मोहि बिरहिन काँ, काहें मारै पपिहरा, बोली की गोली से मारै।

एक तो बैरिन घर सासु ननदिया, दूजे रागर करै बाहर सवतिया।

तेह पर, तुमहू जरे पर जारै, बोली की गोली से मारै।

बेदर्दी पिया गाउन मोर लाए, बाँकी सुरतिया न कबहूँ देखाए।

तूँ पिया पिया कहिके जिगर मोरा फारै, बोली की गोली से मारै।[16]

14. दहँकवा-

'कबीर' और 'जोगीरा' की भांति 'दहंकवा' भी अश्लीलतत्व लिए हुए होता है। इसका गायन भी गाँव के अल्हड़, अर्धसभ्य युवाओं के द्वारा ही होता है। अन्य फाग गीतों के साथ ही बीच बीच में इसका भी गायन होता रहता है-

मति मिले न नारि बिरानी का, मति मिले न।

जबहीं यार दुवारे आए, जबहीं यार दुवारे आए,

घड़ा उठावे पानी का, मति मिले न नारि बिरानी का।

जबहीं यार सेजरिया आवे, जबहीं यार सेजरिया आवे,

लरिका खेलावे जेठानी का, मति मिले न नारि बिरानी का, मति मिले न।[17]

15. मनहरवा-

'मनहरवा' भी अवध क्षेत्र में गाया जाने वाला फाग गीत है। ये भी लघु आकार का ही गीत होता है, जिसे मस्ती के साथ गाया जाता है-

गोरी दुइनौ नयन तोरे विषधारी,

काटि गए जैसे नगिनिया।

कारी-कारी अँखिया से जेका निहारत, बिन छुरी के हलाल कै डारत,

पाप करत नाहक जिय मारी।

शिव प्रसाद तुंहका रहमाती, आसिक न फाटे लखि छाती,

करि हाय गिरै गैल मंझारी, काटि गए जैसे नगिनिया।

गोरी दुइनौ नयन तोरे विषधारी,

काटि गए जैसे नगिनिया।[18]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि अवधी फाग गीत अपने छंद और शिल्प विधान के आधार पर कितने प्रकार के होते हैं। हो सकता है पूर्व में कुछ और भी प्रकार के फाग गीत गाए जाते रहे हों परंतु संकलन के अभाव में आज वे विलुप्त हो गए हैं। वैसे वर्तमान समय में भी इतने प्रकारों में 2-4 जैसे चौताल, डेढ़ताल, धमार, होरी को छोड़कर अन्य प्रकार के फाग बहुत कम गाए जाते हैं, शायद ही किसी गाँव में उनका गायन होता हो। किन्तु वे भी हमारी लोक परंपरा और संस्कृति के भाग हैं इसलिए उनको जानना भी आवश्यक है। अपनी जड़ों के प्रति नई पीढ़ी के भीतर संवेदना पैदा करना आवश्यक है ताकि उन्हें अपनी लोक-परंपरा और संस्कृति की सनद रहे।

संदर्भ-सूची

1. मिश्र, रामबहादुर. (2004). *अवध मा होली खेलै रघुबीरा.* उत्तर प्रदेश: संस्कृति विभाग. पृष्ठ-4
2. चतुर्वेदी, राधवल्लभ. (2022). *ऊंची अटरिया रंग भरी.* दिल्ली: संगीत नाटक अकादमी. पृष्ठ- 211
3. मिश्र, रामबहादुर. (2004). *अवध मा होली खेलै रघुबीरा.* उत्तर प्रदेश: संस्कृति विभाग. पृष्ठ-40
4. पीयूष, जगदीश. (). *अवधी ग्रंथावली(भाग-4).* दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृष्ठ- 300
5. वही, पृष्ठ-302
6. मिश्र, रामबहादुर. (2004). *अवध मा होली खेलै रघुबीरा.* उत्तर प्रदेश: संस्कृति विभाग. पृष्ठ-137
7. वही, पृष्ठ- 200
8. वही, पृष्ठ-19
9. वही, पृष्ठ- 282
10. वही, पृष्ठ- 358
11. त्रिपाठी, रामलाल. *चौताल सागर.* प्रयागराज: श्री दुर्गा पुस्तक भंडार. पृष्ठ-41
12. सिंह, ठाकुर शिवप्रसाद. *चौताल चिर्री(छब्बीसवाँ भाग).* कानपुर: जनता बुक स्टाल. पृष्ठ-6
13. मिश्र, रामबहादुर. *गड़िगे बसंत के ढाह(अवधी फाग साहित्य).* दिल्ली: शिवांक प्रकाशन. पृष्ठ- 35
14. सिंह, ठाकुर शिवप्रसाद. *चौताल चिर्री(छब्बीसवाँ भाग).* कानपुर: जनता बुक स्टाल. पृष्ठ-12

15. वही, पृष्ठ- 9
16. मिश्र, विद्यानिवास. *वाचिक कविता: अवधी*. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ- 74-75
17. मिश्र, रामबहादुर. *गड़िगे बसंत के ढाह(अवधी फाग साहित्य)*. दिल्ली: शिवांक प्रकाशन. पृष्ठ- 183
18. वही, पृष्ठ-184

****